तत्त्वार्थसूत्र

परिचय - पुनरावर्तन

मूलसूत्र

हितोपदेशी वीतरागी

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।

ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये॥

सर्वज्ञ प्रयोजन - भावना

आगे की विषय-वस्तु....

विषय-वस्तु	सूत्र क्रमांक	कुल सूत्र
अवधिज्ञान का वर्णन	२१	१
क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान के भेद तथा उनके स्वामी	२२	१
मन:पर्ययज्ञान के भेद	२३	१
ऋजुमति और विपुलमति में अंतर	२४	१
अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान में विशेषता	२५	१
मति , श्रुत , अवधि , मन:पर्यय , केवलज्ञान का विषय	२६-२९	४
एक जीव के एक साथ कितने ज्ञान हो सकते हैं ?	३०	१

तत्त्वार्थसूत्र

अध्याय १ सूत्र ३०

एक जीव के एक साथ कितने ज्ञान हो सकते हैं ?

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नचतुर्भ्य: ।। ३० ।।

अर्थ – [एकस्मिन्] एक जीव में [युगपत्] एक साथ [एकादीनि] एक से लेकर [आचतुर्भ्यः] चार ज्ञान तक [भाज्यानि] विभक्त करने योग्य हैं अर्थात् हो सकते हैं।

अध्याय १: सूत्र ३० - एक जीव के एक साथ कितने ज्ञान हो सकते हैं ?

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नचतुर्भ्यः ॥ ३० ॥ - सूत्र की विषयवस्तु

- एक जीव के एक साथ एक से लेकर चार ज्ञान तक हो सकते हैं।
- यदि एक ज्ञान हो तो केवलज्ञान होता है;
- दो हों तो मति और श्रुत होते हैं;
- तीन हों तो मति, श्रुत और अवधि अथवा मति, श्रुत और मनःपर्ययज्ञान होते हैं;

अध्याय १: सूत्र ३० - एक जीव के एक साथ कितने ज्ञान हो सकते हैं ?

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नचतुर्भ्यः ॥ ३० ॥ - सूत्र की विषयवस्तु

- चार हों तो मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञान होते हैं।
- एक ही साथ पाँच ज्ञान किसी के नहीं होते और
- एक ही ज्ञान एक समय में उपयोगरूप होता है।
- केवलज्ञान के प्रगट होने पर वह सदा के लिए बना रहता है।

अध्याय १: सूत्र ३० - एक जीव के एक साथ कितने ज्ञान हो सकते हैं ?

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नचतुर्भ्यः ॥ ३० ॥ - सूत्र की विषयवस्तु

- दूसरे ज्ञानों का उपयोग अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्त होता है, उससे अधिक नहीं होता, उसके बाद ज्ञान के उपयोग का विषय बदल ही जाता है।
- केवली के अतिरिक्त सभी संसारी जीवों के कम से कम दो अर्थात् मति और श्रुतज्ञान अवश्य होते हैं।

अध्याय १: सूत्र ३० - एक जीव के एक साथ कितने ज्ञान हो सकते हैं ?

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नचतुर्भ्यः ॥ ३० ॥ - सूत्र की विषयवस्तु

- क्षायोपशमिक ज्ञान क्रमवर्ती है, एक काल में एक ही प्रवर्तित होता है; किन्तु यहाँ जो चार ज्ञान एक ही साथ कहे हैं, सो चार का विकास एक ही समय होने से चार ज्ञानों की जाननेरूप लब्धि एक काल में होती है – यही कहने का तात्पर्य है। उपयोग तो एक काल में एक ही स्वरूप होता है ॥३० ॥

तत्त्वार्थसूत्र

अध्याय १ सूत्र ३०

तत्त्वार्थसूत्र

अध्याय १ सूत्र ९-३०

आत्मा वास्तव में परमार्थ है और वह ज्ञान है। आत्मा स्वयं एक ही पदार्थ है, इसलिए ज्ञान भी एक ही पद है। जो यह ज्ञान नामक एक पद है, सो यह परमार्थस्वरूप साक्षात् मोक्ष-उपाय है। इन सूत्रों में ज्ञान के जो भेद कहे हैं, वे इस एक पद को अभिनन्दन करते हैं।

ज्ञान के हीनाधिकरूप भेद उसके सामान्य ज्ञानस्वभाव को नहीं भेदते, किन्तु अभिनन्दन करते हैं; इसलिए जिसमें समस्त भेदों का अभाव है, ऐसे आत्मस्वभावभूत ज्ञान का ही एक का आलम्बन करना चाहिए अर्थात् ज्ञानस्वरूप आत्मा का ही अवलम्बन करना चाहिए, ज्ञानस्वरूप आत्मा के अवलम्बन से ही निम्न प्रकार प्राप्ति होती है —

अध्याय १: सूत्र ९ से ३० तक का सिद्धान्त

(१) जिन पद की प्राप्ति होती है।

(२) भ्रान्ति का नाश होता है।

(३) आत्मा का लाभ होता है।

(४) अनात्मा का परिहार सिद्ध होता है।

(५) भावकर्म बलवान नहीं हो सकता।

(६) राग-द्वेष-मोह उत्पन्न नहीं होते।

अध्याय १: सूत्र ९ से ३० तक का सिद्धान्त

(७) पुनः कर्म का आस्रव नहीं होता।

(८) पुनः कर्म नहीं बँधता।

(९) पूर्वबद्ध कर्म भोगा जाने पर निर्जरित हो जाता है।

(१०) समस्त कर्मों का अभाव होने से साक्षात् मोक्ष होता है।

ज्ञानस्वरूप आत्मा के आलम्बन को ऐसी महिमा है।

क्षायोपशम के अनुसार ज्ञान में जो भेद होते हैं, वे कहीं ज्ञान सामान्य को अज्ञानरूप नहीं करते, प्रत्युत ज्ञान को प्रकट करते हैं, इसलिए इन सब भेदों पर का लक्ष गौण करके ज्ञान सामान्य का अवलम्बन करना चाहिए। नववें सूत्र के अन्त में एकवचन सूचक 'ज्ञानम्' शब्द कहा है, वह भेदों का स्वरूप जानकर, भेदों पर का लक्ष छोड़कर, शुद्धनय के विषयभूत अभेद, अखण्ड ज्ञानस्वरूप आत्मा की ओर अपना लक्ष करने के लिए कहा है; ऐसा समझना चाहिए।

[पाटनी ग्रन्थमाला का श्री समयसार, गाथा २०४, पृष्ठ ३१०]

तत्त्वार्थसूत्र

अध्याय १ सूत्र ९-३०

022 - 2663 1165 | +91 96195 04576 | parlajinmandir@gmail.com | www.parlajinmandir.org | /Parla.Jinmandir | /c/ParlaJinmandir

आगे की विषय-वस्तु....

विषय-वस्तु	सूत्र क्रमांक	कुल सूत्र
मति , श्रुत , अवधि , मन:पर्यय , केवलज्ञान का विषय	२६-२९	४
एक जीव के एक साथ कितने ज्ञान हो सकते हैं ?	३०	१
मति , श्रुत और अवधिज्ञान में मिथ्यात्व एवं उत्तर	३१ , ३२	२
प्रमाण का स्वरुप कहा गया , अब श्रुतज्ञान के अंशरुप नय का स्वरुप कहते हैं	३३	१

तत्त्वार्थसूत्र

अध्याय १ सूत्र ३१-३२

मति , श्रुत और अवधिज्ञान में मिथ्यात्व

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥ ३१ ॥

अर्थ – [मतिश्रुतावधयः] मति, श्रुत और अवधि यह तीन ज्ञान [विपर्ययः] विपर्यय भी होते हैं।

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥ ३१ ॥ - सूत्र की विषयवस्तु

- उपरोक्त पाँचों ज्ञान सम्यग्ज्ञान हैं, किन्तु मति, श्रुत और अवधि यह तीनों ज्ञान मिथ्याज्ञान भी होते हैं।
- उस मिथ्याज्ञान को कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुअवधि (विभङ्गावधि) ज्ञान कहते हैं।
- अभी तक सम्यग्ज्ञान का अधिकार चला आ रहा है, अब इस सूत्र में 'च' शब्द से यह सूचित किया है कि यह तीन ज्ञान सम्यक् भी होते हैं और मिथ्या भी होते हैं।

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥ ३१ ॥ - सूत्र की विषयवस्तु

- सूत्र में विपर्ययः शब्द प्रयुक्त हुआ है, उसमें संशय और अनध्यवसाय गर्भितरूप से आ जाते हैं।
- मति और श्रुतज्ञान में संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय यह तीन दोष हैं;
- अवधिज्ञान में संशय नहीं होता, किन्तु अनध्यवसाय अथवा विपर्यय, यह दो दोष होते हैं, इसलिए उसे कुअवधि अथवा विभङ्ग कहते हैं।
- विपर्यय सम्बन्धी विशेष वर्णन ३२वें सूत्र की टीका में दिया गया है।

अध्याय १: सूत्र ३१ - मति ,श्रुत और अवधिज्ञान में मिथ्यात्व

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥ ३१ ॥ - सूत्र की विषयवस्तु

- अनादि मिथ्यादृष्टि के कुमति और कुश्रुत होते हैं तथा उसके देव और नारकी के भव में कुअवधि भी होता है। जहाँ-जहाँ मिथ्यादर्शन होता है, वहाँ-वहाँ मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र अविनाभावीरूप से होता है ॥३१ ॥

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥ ३१ ॥ - सूत्र की विषयवस्तु

प्रश्न –

- जैसे सम्यग्दृष्टि जीव नेत्रादि इन्द्रियों से रूपादि को सुमति से जानता है, उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि भी कुमतिज्ञान से उन्हें जानता है
- तथा जैसे सम्यग्दृष्टि जीव श्रुतज्ञान से उन्हें जानता है तथा कथन करता है, उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि भी कुश्रुतज्ञान से जानता है और कथन करता है

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥ ३१ ॥ - सूत्र की विषयवस्तु

- और कथन करता है तथा जैसे सम्यग्दृष्टि अवधिज्ञान से रूपी वस्तुओं को जानता है, उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि कुअवधिज्ञान से जानता है,
- तब फिर मिथ्यादृष्टि के ज्ञान को मिथ्याज्ञान क्यों कहते हो ?

सम्यग्ज्ञान व मिथ्याज्ञान की तुलना

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥

अर्थ – [यदृच्छोपलब्धेः] अपनी इच्छा से चाहे जैसा (Whims) ग्रहण करने के कारण [सत् असतोः] विद्यमान और अविद्यमान पदार्थों का [अविशेषात्] भेदरूप ज्ञान (यथार्थ विवेक) न होने से [उन्मत्तवत्] पागल के ज्ञान की भाँति मिथ्यादृष्टि का ज्ञान विपरीत अर्थात् मिथ्याज्ञान ही होता है।

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ - अधिकार की विषयवस्तु

- अविनाशी सुख के लिए सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप एक ही मार्ग है, यह पहिले सूत्र में बताकर,
- दूसरे सूत्र में सम्यग्दर्शन का लक्षण बताता है;
- जिसकी श्रद्धा से सम्यग्दर्शन होता है, वे सात तत्त्व चौथे सूत्र में बताये हैं,
- तत्त्वों को जानने के लिए प्रमाण और नय के ज्ञानों की आवश्यकता है, ऐसा ६वें सूत्र में कहा है।

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ - अधिकार की विषयवस्तु

- पाँच ज्ञान सम्यक् हैं, इसलिए वे प्रमाण हैं, यह ९-१०वें सूत्र में बताया है
- और उन पाँच सम्यग्ज्ञानों का स्वरूप ११ से ३०वें सूत्र तक बताया है।

अध्याय १: सूत्र ३२ - सम्यग्ज्ञान व मिथ्याज्ञान की तुलना

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ - अधिकार की विषयवस्तु

- इतनी भूमिका बाँधने के बाद मति, श्रुत और अवधि यह तीन मिथ्याज्ञान भी होते हैं और जीव अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि है, इसलिए वह जब तक सम्यक्त्व को नहीं पाता, तब तक उसका ज्ञान विपर्यय है, यह ३१वें सूत्र में बताया है।
- सुख के सच्चे अभिलाषी को सर्व प्रथम मिथ्यादर्शन का त्याग करना चाहिए - यह बताने के लिए इस सूत्र में मिथ्याज्ञान जो कि मिथ्यादर्शन पूर्वक ही होता है, उसका स्वरूप बताया है।

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ - अधिकार की विषयवस्तु

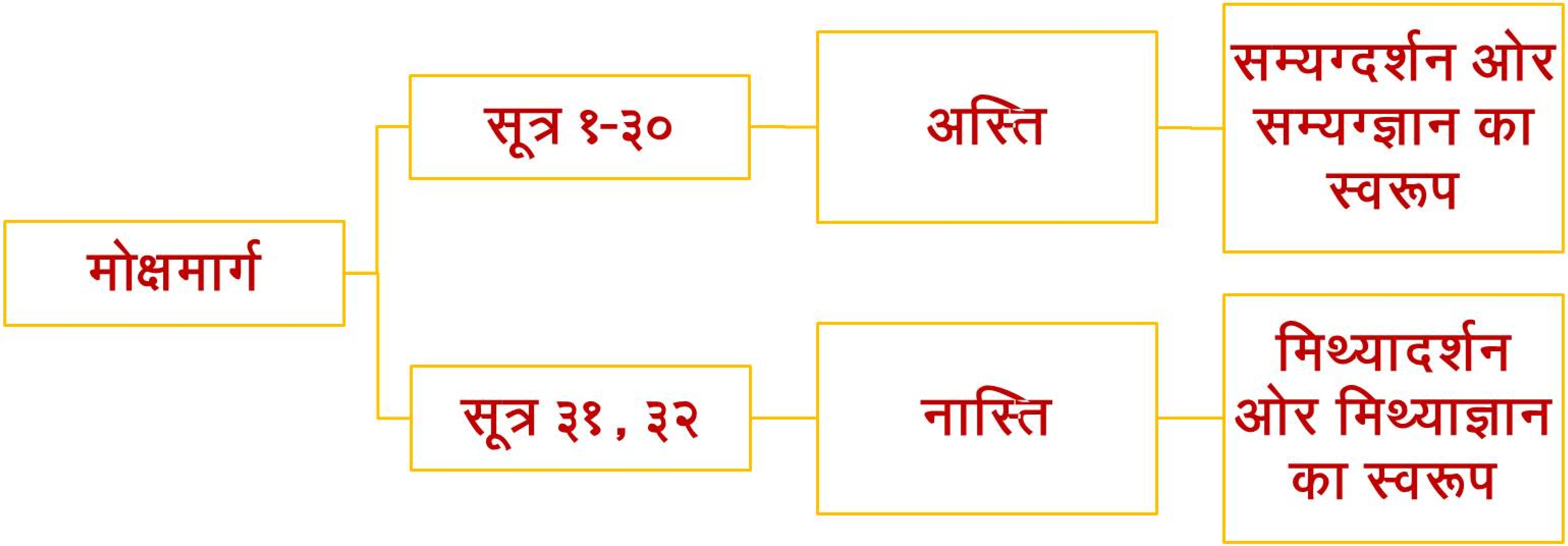

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ - अधिकार की विषयवस्तु

इस प्रकार 'अस्ति–नास्ति' के द्वारा अर्थात् अनेकान्त के द्वारा सम्यग्ज्ञान को प्रगट करके मिथ्याज्ञान की नास्ति करने के लिए उपदेश दिया है।

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ - सूत्र का अर्थ

सत् = विद्यमान (वस्तु)

असत् = अविद्यमान (वस्तु)

अविशेषात् = इन दोनों का यथार्थ विवेक न होने से।

यदृच्छ (विपर्यय) उपलब्धेः = [विपर्यय शब्द की ३१वें सूत्र से अनुवृत्ति चली आई है।] विपरीत–अपनी मनमानी इच्छानुसार कल्पनाएँ होने से वह मिथ्याज्ञान है।

अध्याय १: सूत्र ३२ - सम्यग्ज्ञान व मिथ्याज्ञान की तुलना

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ - सूत्र का अर्थ

उन्मत्तवत् - मदिरा पीए हुए मनुष्य की भाँति।

विपर्यय - विपरीतता

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ - सत् का स्वरूप

सत् - त्रिकाल टिकनेवाला, सत्यार्थ, परमार्थ, भूतार्थ, निश्चय, शुद्ध यह सब एकार्थवाचक शब्द हैं। जीव का ज्ञायकभाव त्रैकालिक अखण्ड है; इसलिए वह सत्, सत्यार्थ, परमार्थ, भूतार्थ, निश्चय और शुद्ध है। इस दृष्टि को द्रव्यदृष्टि, वस्तुदृष्टि, शिवदृष्टि, तत्त्वदृष्टि और कल्याणकारी दृष्टि भी कहते हैं।

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ - असत् का स्वरूप

असत् – क्षणिक, अभूतार्थ, व्यवहार, भेद, पर्याय, भङ्ग, अविद्यमान, जीव में होनेवाला विकारभाव असत् है, क्योंकि वह क्षणिक है और टालने पर टाला जा सकता है।

अध्याय १: सूत्र ३२ - सम्यग्ज्ञान व मिथ्याज्ञान की तुलना

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ - सम्यग्ज्ञान कैसे हो ?

जीव अनादि काल से इस असत् विकारी भाव पर दृष्टि रख रहा है, इसलिए उसे पर्यायबुद्धि, व्यवहारविमूढ़, अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, मोही और मूढ़ भी कहा जाता है। अज्ञानी जीव इस असत् क्षणिक भाव को अपना मान रहा है अर्थात् वह असत् को सत् मान रहा है; इसलिए इस भेद को जानकर जो असत् को गौण करके सत्स्वरूप पर भार देकर अपने ज्ञायक -स्वभाव की ओर उन्मुख होता है, वह मिथ्याज्ञान को दूर करके सम्यग्ज्ञान प्रगट करता है; उसकी उन्मत्तता दूर हो जाती है।

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ - सूत्र का भाव

सुख के सच्चे अभिलाषी को मिथ्याज्ञान का स्वरूप समझाने के लिये कहा है कि

१- मिथ्यादृष्टि जीव सत् और असत् के बीच का भेद (विवेक) नहीं जानता, इससे सिद्ध हुआ कि प्रत्येक भव्य जीव को पहिले सत् क्या है, और असत् क्या है, इसका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके मिथ्याज्ञान को दूर करना चाहिए।

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ - सूत्र का भाव

२- जहाँ सत् और असत् के भेद का अज्ञान होता है, वहाँ नासमझपूर्वक जीव जैसा अपने को ठीक लगता है, वैसा पागल पुरुष की भाँति अथवा शराब पीये हुए मनुष्य की भाँति मिथ्या कल्पनाएँ किया ही करता है। इसलिए यह समझाया है कि सुख के सच्चे अभिलाषी जीव को सच्ची समझपूर्वक मिथ्या कल्पनाओं का नाश करना चाहिए।

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ - विपर्यय का स्वरूप

विपर्यय – विपरीतता, वह तीन प्रकार की है – १. कारणविपरीतता, २. स्वरूप–विपरीतता, ३. भेदाभेदविपरीतता।

कारणविपरीतता – मूलकारण को न पहचाने और अन्यथा कारण को माने।

अध्याय १: सूत्र ३२ - सम्यग्ज्ञान व मिथ्याज्ञान की तुलना

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ - विपर्यय का स्वरूप

स्वरूपविपरीतता - जिसे जानता है, उसके मूल वस्तुभूत स्वरूप को न पहचाने और अन्यथा स्वरूप को जाने।

भेदाभेदविपरीतता - जिसे वह जानता है, उसे 'यह इससे भिन्न है' और 'यह इससे अभिन्न है' - इस प्रकार यथार्थ न पहचानकर अन्यथा भिन्नत्व-अभिन्नत्व को माने, सो भेदाभेदविपरीतता है।

अध्याय १: सूत्र ३२ - सम्यग्ज्ञान व मिथ्याज्ञान की तुलना

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ - विपरीतता कैसे दूर हो ?

- सच्चे धर्म की परिपाटी है कि पहले जीव सम्यक्त्व प्रगट करता है, पश्चात् व्रतरूप शुभभाव होते हैं
- और सम्यक्त्व स्व और पर का श्रद्धान होने पर होता है तथा वह श्रद्धान द्रव्यानुयोग (अध्यात्मशास्त्रों) का अभ्यास करने से होता है,
- इसलिए पहले जीव को द्रव्यानुयोग के अनुसार श्रद्धा करके सम्यग्द्रष्टि होना चाहिए और फिर स्वयं चरणानुयोग के अनुसार सच्चे व्रतादि धारण करके व्रती होना चाहिए।

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ - विपरीतता कैसे दूर हो ?

- इस प्रकार मुख्यता से तो निचली दशा में ही द्रव्यानुयोग कार्यकारी है। यथार्थ अभ्यास के परिणामस्वरूप विपरीतता को दूर होने पर निम्न प्रकार यथार्थतया मानता है —

(आधुनिक हिन्दी मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ २१३)

अध्याय १: सूत्र ३२ - सम्यग्ज्ञान व मिथ्याज्ञान की तुलना

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ - कारणविपरीतता कैसे दूर हो ?

(१) एक द्रव्य, उसके गुण या पर्याय दूसरे द्रव्य, उसके गुण या पर्याय में कुछ भी नहीं कर सकते। प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने कारण से अपनी पर्याय धारण करता है। विकारी अवस्था के समय परद्रव्य निमित्तरूप अर्थात् उपस्थित तो होता है किन्तु वह किसी अन्य द्रव्य में विक्रिया (कुछ भी) नहीं कर सकता।

(श्री समयसार गाथा ३७३ से ३८२ टीका, पृष्ठ ५१५)

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ - कारणविपरीतता कैसे दूर हो ?

प्रत्येक द्रव्य में **अगुरुलघुत्व** नामक गुण है, इसलिए वह द्रव्य अन्यरूप नहीं होता, एक गुण दूसरे रूप नहीं होता और एक पर्याय दूसरे रूप नहीं होती। एक द्रव्य के गुण या पर्याय उस द्रव्य से पृथक् नहीं हो सकते। इस प्रकार जो अपने क्षेत्र से अलग नहीं हो सकते और पर द्रव्य में नहीं जा सकते, तब फिर वे उसका क्या कर सकते हैं ? कुछ भी नहीं।

अध्याय १: सूत्र ३२ - सम्यग्ज्ञान व मिथ्याज्ञान की तुलना

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ - कारणविपरीतता कैसे दूर हो ?

एक द्रव्य, गुण या पर्याय दूसरे द्रव्य की पर्याय में कारण नहीं होते, इसी प्रकार वे दूसरे का कार्य भी नहीं होते। ऐसी अकारणकार्यत्वशक्ति प्रत्येक द्रव्य में विद्यमान है। इस प्रकार समझ लेने पर कारणविपरीतता दूर हो जाती है।